पैरोल से फ़रार हत्यारे नीरज को पुलिस ने पुनः पकड़ा

फ़रीदाबाद (म.मो.) दिन-दहाड़े अजरौंदा गांव के व्यवसायी गोपाल सिंह की उनहीं के गांव में हत्या करने वाले नीरज जाट को बड़ी मुश्किल से पुलिस ने पकड़ कर, तमाम कानूनी दांव-पेचों से निकलते हुए उसकी सज़ा कराई थी। उम्रकैद की सज़ा काटने के लिए भों जेल में उसे बंद कर दिया गया। लेकिन जेल एवं न्याय प्रक्रिया के भुरभुरे तथा बिकाऊ कानून उसे बहुत दिनों तक जेल में बंद नहीं रख सके। वह जल्द ही पैरोल पर जेल से बाहर आ गया।

देश की आपराधिक न्याय व्यवस्था में पैरोल सज़ायाफ्ता कैदी का वह 'अधिकार' है जिसके द्वारा वह अपने कृषि कार्यो, मकान की मरम्मत, बच्चों के दाखिले आदि के लिये तथा माता, पिता व पत्नी की बीमारी में देखभाल के लिये हर साल में 15 दिन के लिये प्राप्त कर सकता है। मज़े की बात यह है कि इस अधिकार का लाभ केवल शातिर अपराधियों को ही मिल सकता है जो इसे प्राप्त करने के लिये पूरी रकम खर्च करने की क्षमता रखते हों।

मोटी रकमें ले कर हत्या करने वाले नीरज ने पैरोल कानून के मुताबिक पैरोल के लिये अपनी (भोंडसी) जेल में आवेदन पत्र दिया कि उसका बूढ़ा बाप बीमार है, इसलिये उसकी देखभाल के लिये उसे

पुलिस ने कड़ी मशक्कत के बाद उसको जब पकड़ लिया तो उसने बताया कि वह शीघ्र ही यहां दो बड़े लोग़ों की हत्या कर के अपना सिक्का जमाने वाला था, जिसके चलते वह नेपाल में बैठ कर आराम से टेलीफ़ोन पर ही हवाला के ज़रिये वसूलियां कर के मौज करता

पैरोल दी जाये। उचित 'खर्चा-पानी' करने के बाद यह आवेदन जेल अधिकारियों के माध्यम से नीरज के अलीगढ़ (यूपी) स्थित गांव के थाने में पहुंचा, वहां से उचित 'सेवा-पानी' के बाद एसपी तथा फ़िर ज़िला मैजिस्ट्रेट के पास पहुंचा। इन सभी अधिकारियों की उचित 'सेवा-पानी' के बदले इसे दो लाख रुपये के दो जमानती ले कर पैरोल दिये जाने की अनुशंसा हरियाणा के प्रशासनिक एवं जेल अधिकारियों से कर दी। इसी के आधार पर नीरज को पैरोल मिल गयी। यह तो बात थी प्रशासनिक, पुलिस एवं जेल अधिकारियों की जिन्होंने जैसे-तैसे एक शातिर अपराधी को जेल से निकलने में कानूनी मदद की। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि यदि उक्त सभी अधिकारी ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ होते और इस शातिर हत्यारे को पैरोल न देते तो क्या होता? तो होता यह कि एक 'बड़ा' वकील मोटी 'फ़ीस' ले कर हाई कोर्ट में कानून एवं मानवाधिकार की दुहाई देता। सभी संबंधित अधिकारियों को भ्रष्टाचारी बता कर कोर्ट में कहता कि उन अधिकारियों को मोटी रिश्वतें नहीं दी, मात्र इसीलिये पैरोल की अर्ज़ी रद्द कर दी गयी। कोर्ट इस पर सभी संबंधित अधिकारियों को लताड़ती व उसके अधिकारों का हवाला देते हुये आदेश करती कि पैरोल पर जाना तो हर अपराधी का हक है, और यदि वह पैरोल से बाहर आ कर पुनः अपराध करता है या पैरोल से लौटता नहीं है तो इससे निपटने का काम पुलिस का है।

यहां गौरतलब बात यह है कि उच्च अदालतें इतने 'सुंदर' व 'मीठे' फ़ैसले प्रत्येक पैरोल चाहने वाले अपराधी को नहीं सुनाती। ऐसे फ़ैसले तो केवल तभी सुनाये जाते हैं जब वकील ने 'मोटी' फ़ीस ली हो, जाहिर है उस 'मोटी' फ़ीस को अकेला वकील नहीं पचाता। इसके उलट यदि बिना मोटी फ़ीस का वकील सामने हो तो कोर्ट कहती है कि ऐसे शातिर अपराधी को जेल से बाहर निकालने का जोखिम नहीं लिया जा सकता।

15 दिन की पैरोल पर रिहा होने के बाद नीरज वापस जेल नहीं गया। उसने जाना भी नहीं था। बाहर आ कर उसने पुनः अपराध की दुनिया में अपना काम शुरू कर दिया। उसकी योजना थी कि धनी व संपन्न व्यवसायियों को धमकी दे कर डराना व मोटी रकमें वसूलना। इस तरह की कुछ धमकियां उसने फ़रीदाबाद के लोग़ों को दी भी। ऐसे व्यवसायियों में से एक अशोक मित्तल ने तो उसको पलट कर (23 मार्च व 4 अप्रैल को) ऐसी कड़क डांट पिलाई और थाने में रपट दर्ज करा दी कि उसने दुबारा फ़ोन करने की हिम्मत नहीं की। लेकिन बाकी के लोग़ इस कदर डर गये कि घर से निकलना भी छोड़ गये अथवा पुलिस गनमैन प्राप्त कर लिये। लेकिन नीरज को एक चवन्नी भी न मिली।

पुलिस ने कड़ी मशक्कत के बाद उसको जब पकड़ लिया तो उसने बताया कि वह शीघ्र ही यहां दो बड़े लोग़ों की हत्या कर के अपना सिक्का जमाने वाला था, जिसके चलते वह नेपाल में बैठ कर आराम से टेलीफ़ोन पर ही हवाला के ज़रिये वसूलियां कर के मौज करता रहता। फ़िलहाल पुलिस ने उसे जेल तो भेज दिया है, परंतु अब देखने वाली बात यह है कि कब उच्च न्यायालय किसी मोटी 'फ़ीस' वाले वकील के कहने पर उसे पुनः जेल से बाहर निकाल कर अपराध जगत में सक्रिय होने का मौका प्रदान करता है?

बाटा पुल के नीचे

पुलिस व नगर निगम की छत्रछाया में अवैध बाज़ार

फरीदाबाद (म.मो.) बाटा पुल के नीचे से हो कर न्यू टाऊन रेलवे स्टेशन जाना कोई आसान काम नहीं है। इसके लिए हर व्यक्ति को काफ़ी मशक्कत करनी पड़ती है। बेशुमार भीड़ और धक्का-मुक्की का सामना करना पड़ता है। इसका एकमात्र कारण है बाटा पुल के नीचे लगने वाला अवैध बाज़ार। जहां-तहां फल एवं तमाम दूसरी तरह की चीज़ों को बेचने के लिये लगाई जाने वाली रेहड़ियां। इसके अलावा दर्जनों की संख्या में बेतरतीब खड़े रिक्शे वाले और थ्री-व्हीलर्स। इस सब के कारण ऐसी स्थिति बनी रहती है कि कोई भी व्यक्ति आसानी से, यानी बिना किसी से टकराये स्टेशन पहुंच ही नहीं सकता। चूंकि यह व्यवस्था बरसों से चली आ रही है, इसलिए लोग़ इसके अभ्यस्त हो चुके हैं। लेकिन सवाल है कि नगर निगम के अधिकारियों को बाटा पुल के नीचे खड़ा यह बाज़ार दिखाई नहीं पड़ता, या यह उनकी मौन सहमति से चल रहा है?

ज़ाहिर है, बिना नगर निगम से सांठगांठ के इतना बड़ा अवैध बाज़ार चल ही नहीं सकता, जहां नाना प्रकार की चीज़ें तो बिकती ही हैं, इस बाज़ार की आड़ में तरह-तरह के अपराध भी फलते-फूलते हैं।

इस जगह की खासियत यह है कि पुल का पूर्वी भाग थाना सेक्टर-7 के अंतर्गत आता है। शेष आधे पुल की एक साइड थाना मुजेसर व दूसरी साइड थाना कोतवाली की है जबकि स्टेशन जीआरपी के अधिकार क्षेत्र में है। जहां तक नगर निगम का सवाल है, वह तो सर्वव्यापी है।

चार थाना क्षेत्रों के अंतर्गत आने के कारण इस क्षेत्र में अगर कोई वारदात हो तो जल्दी तय नहीं हो पाता कि कार्रवाई कौन-सा थाना करेगा। यह अलग बात है कि इस अवैध बाज़ार के दुकानदार किसी

शाम का धुंधलका छाते ही ट्रेनों से उतर कर लड़कियां और औरतें ऑटो पकड़ने के लिए जब इधर आती हैं तो उनके साथ छेड़खानी के अलावा झपटमारी तक की वारदातें हो जाती हैं। अपराधी अपने काम को अंजाम दे कर पुल के नीचे से अंधेरे में कहां गायब हो जाते हैं, कुछ पता नहीं चल पाता। इस क्षेत्र में पेशेवर अपराधियों के गिरोह भी सक्रिय हैं जिनकी पुलिस से अच्छी-खासी मिलीभगत है। ये अपराधी पुल के ऊपर भी चले जाते हैं और झपटमारी के अलावा असलहों के बल पर लूट-मार भी करते हैं।

न किसी अथवा हर किसी को कुछ न कुछ दे कर पूरी तरह से भयमुक्त हो निर्द्वंद्व भाव से अपना काम करते हैं। यह भी स्पष्ट है कि नगर निगम ने भी अपना 'विशेष सुविधा शुल्क' अवश्य ही निर्धारित कर रखा होगा।

उपरोक्त बाज़ार एक ऐसा बाज़ार है जहां हर तरह का नकली माल तो मिलता ही है, अश्लील फिल्मों व गीतों की सीडी, अश्लील किताबें आदि भी मिलती हैं। गांजा, अफ़ीम, चरस, स्मैक और शराब भी आसानी से मिल जाती हैं। अंधेरा होते ही अपराधी और आवारागर्द तत्व खुलेआम अपना खेल खेलने लगते हैं। अवैध दुकानें बाटा मोड़ तक पसरी हुई हैं। पटरी पर बिछी दुकानों के पीछे अंधेरे में हर तरह के कुकर्म होते हैं। यहां खुलेआम देह व्यापार के दलाल भी मंडराते रहते हैं। शाम का धुंधलका छाते ही ट्रेनों से उतर कर लड़कियां और औरतें ऑटो पकड़ने के लिए जब इधर आती हैं तो उनके साथ छेड़खानी के अलावा झपटमारी तक की वारदातें हो जाती हैं। अपराधी अपने काम को अंजाम दे कर पुल के नीचे से अंधेरे में कहां गायब हो जाते हैं, कुछ पता नहीं चल पाता। इस क्षेत्र में पेशेवर अपराधियों के गिरोह भी सक्रिय हैं जिनकी पुलिस से अच्छी-खासी मिलीभगत है। ये अपराधी पुल के ऊपर भी चले जाते हैं और झपटमारी के अलावा असलहों के बल पर लूट-मार भी करते हैं। अव्वल तो ये पुलिस की गिरफ़्त में आते नहीं, क्योंकि वह इस जगह के प्रति पूरी तरह उदासीन है और कभी भूले-भटके ये पुलिस के हत्थे चढ़ भी गये तो वह ले-दे कर इन्हें छोड़ देती है। उल्लेखनीय है कि 22-23 सितंबर की मध्य रात्रि में मुजेसर पुलिस ने लूटपाट एवं झपटमारी के मामले में सात अपराधियों को पकड़ा था जिनमें चार को पैसे ले कर छोड़ दिया। लेकिन जब यह मामला प्रकाश में आया और बात उच्च अधिकारियों तक पहुंची तो पुलिस ने फ़िर उन चारों अपराधियों को पकड़ा। इस तरह पुलिस ने छोड़े गये अपराधी तो पुनः पकड़ लिए, लेकिन उन्हें छोड़ा किसने था और क्यों, इसकी जिम्मेदारी किस पर है, यह कौन तय करेगा? क्या पुलिस के आला अधिकारी इस संबंध में कुछ करेंगे ताकि दुबारा ऐसा न हो।

बहरहाल, यह तो एक वारदात की बात है। ऐसी न जाने कितनी वारदातें रोज़ ही हुआ करती हैं - पुल पर भी और नीचे भी। इस तरह यह बाज़ार पुलिस और नगर निगम के अधिकारियों-कर्मचारियों की नियमित अवैध कमाई का एक बेहतरीन ज़रिया है।

मज़दूरों का संघर्ष

मालिकों और पुलिस-प्रशासन के हौसले पस्त हुए

गुड़गांव (इंकलाबी मज़दूर केंद्र) यूनियन बनाने के लिए आवाज़ उठाने वाले सनबीम और रिको के मज़दूरों की पुलिस ने 23 सितंबर की रात घेराबंदी कर बर्बर लाठीचार्ज किया था जिसमें दर्जनों मज़दूर बुरी तरह घायल हुए और दस मज़दूरों को गंभीर चोटें आईं जो अस्पताल में भर्ती हैं। इसी तरह रिको ऑटो इंडस्ट्रीज के मज़दूरों पर पुलिस ने दो बार लाठीचार्ज किया। इसके जवाब में 25 सितंबर को 18 ट्रेड यूनियनों के लगभग बीस हज़ार मज़दूरों का सैलाब जब शहर की सड़कों पर उतरा तो न केवल मालिकानों के होश फ़ाख़्ता हो गये, बल्कि शासन-प्रशासन भी हक्का-बक्का रह गया।

मज़दूरों की प्रचंड शक्ति के आगे सब कुछ ठहर गया। दूर-दूर तक सिर्फ़ मज़दूरों का सैलाब नज़र आ रहा था। पूरा शहर लाल सलाम के नारों व लाल झंडों से पट गया। मालिकान अपने सुरक्षित ठिकानों में छिप गए। भाड़े के गुंडे चूहों की तरह बिलों में दुबक गये। बात-बात पर मज़दूरों से लाठी-गोली की भाषा में बात करने वाले पुलिस-प्रशासन की न केवल अकड़ टूट गई, बल्कि वह भीगी बिल्ली बना नज़र आया। पहले मज़दूरों की सभा व रैली न होने की जिद पर अड़े प्रशासन को न केवल सभा व रैली की इज़ाजत देनी पड़ी, बल्कि उपायुक्त महोदय को 23 सितंबर के लाठी चार्ज को ग़लत बता कर उसकी जांच कर दोषियों को सजा देने तथा दस दिन के भीतर प्रबंधन को समझौते के लिए बाध्य करने का आश्वासन देना पड़ा।

यह वही शहर है जहां 2005 में हरियाणा सरकार के निर्देश पर पुलिस-प्रशासन ने होंडा के मज़दूरों को वार्ता के बहाने बुला कर बर्बरता की सभी सीमाओं को पार करते हुए उन पर लाठी चार्ज किया था। गुड़गांव में होंडा मज़दूरों पर लाठीचार्ज शासन-प्रशासन ने उनका हौसला तोड़ने के लिए किया था। पूरे देश में कहीं भी जब मज़दूर संघर्ष के लिए उतरते हैं तो शासन-प्रशासन के लिए उन पर बर्बरतापूर्वक लाठियां बरसाना और गोली तक चलवाना एक आसान नुस्खा बन गया है। लेकिन गुड़गांव के मज़दूरों ने अपनी व्यापक एकजुटता से शासन-प्रशासन के इस नुस्खे को हास्यास्पद बना दिया है। आज मज़दूरों के हौसले जहां बुलंद हैं, वहीं मालिकानों के होश उड़े हुए हैं। पूरे गुड़गांव के मज़दूर संघर्षरत मज़दूरों से अपनी एकजुटता जाहिर कर रहे हैं। न केवल गुड़गांव, बल्कि पूरे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के मज़दूर गुड़गांव के मज़दूरों के साथ एकजुटता दिखा रहे हैं।

भूलना नहीं होगा कि मज़दूर अपनी वाजिब मांगों को लेकर जब भी संघर्ष पर उतारू होते हैं तो मालिकों की मदद के लिए पुलिस-प्रशासन लाठियां और बंदूकें लेकर सामने आ जाता है। श्रम विभाग भी कानूनी दांव-पेंचों में फंसा कर और मज़दूरों को थका कर उनकी कचूमर निकाल देता है। गुड़गांव में यूनियन के लिए संघर्षरत सनबीम और रिको के साथ भी यही हुआ, पर उन्होंने एकजुट होकर अपनी ताकत दिखा दी और मालिकों के पालतू गुंडों के साथ-साथ पुलिस-प्रशासन के हौसले भी पस्त कर दिये।

मज़दूर मोर्चा की ओर से गुड़गांव के संघर्षरत बहादुर मज़दूरों को चेताया जाता है कि न तो पुलिस एवं प्रशासन के हौसले पस्त हुये हैं और न ही मालिकान के पालतू गुंडे बिलों में घुसे हैं। यह तो मात्र उनकी एक रणनीतिक चाल है जो उचित समय के इंतज़ार में अपनी शक्ति को संजोये रखना चाहते हैं। यदि उपायुक्त ने उन्हें जांच का कोई आश्वासन दिया भी है तो वह भी मात्र किसी धोखे से कम नहीं है। जांच का जो परिणाम प्रशासन न जाने कब घोषित करेगा, उसे मज़दूरों को आज ही समझ लेना चाहिये। इस तरह की किसी भी जांच के नाटक में सदैव मज़दूरों को ही दोषी ठहराया जाता है, न कि सरकारी मशीनरी व मालिकान और उनके गुंडों को। इसलिये संघर्षरत मज़दूरों के लिये यह अति आवश्यक है कि वे अपनी एकता, संगठन व जुझारू शक्ति का पूर्ण विकास एवं संचय करने के साथ-साथ अपनी राजनीतिक सूझबूझ को भी बढ़ायें।

प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक सतीश कुमार ने अपने स्वामित्व में रोनिज़ा प्रिंटर्स, 3बी-6, एनआईटी फरीदाबाद से मुद्रित करवा कर 1 डी/2बी.पी. नियर हार्डवेयर चौक, एनआईटी फरीदाबाद से प्रकाशित किया। Postal Reg. No. L/H.R/FBD/463-06